

इकाई 28

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

- 28.1 प्रस्तावना
- 28.2 जाति की परिभाषा
- 28.3 जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धांत
- 28.4 युगों से प्रचलित जाति व्यवस्था
- 28.5 जाति: एक पृथक परिघटना नहीं
- 28.6 सारांश
- 28.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- जाति की परिभाषा दे सकेंगे;
- प्रथा के रूप-में जाति के सिद्धांतों को रेखांकित कर सकेंगे; तथा
- युगों से प्रचलित जाति व्यवस्था को स्पष्ट कर सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

यह शायद सत्य है कि पारंपरिक हिंदू समाज की सर्वाधिक उल्लिखित विशिष्टता है यहाँ की जाति की संस्था या जैसा कि अक्सर जाता है जाति व्यवस्था।

जाति की उत्पत्ति एक ऐसा विषय है जिसने बहुत सी परिकल्पनाओं को जन्म दिया है। युगो पुरानी भारतीय जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के बारे में कोई एकमतता नहीं है। जाति संरचना इतनी जटिल है कि यद्यपि सामाजिक वैज्ञानिकों ने इस विषय पर ढेर सारा शोध किया है फिर भी इसकी उत्पत्ति का वैध स्पष्टीकरण अभी तक सामने नहीं आया है।

हमारी यह इकाई जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के विविध सिद्धांतों पर देखने का प्रयास करती है; इस इकाई में हमने विविध बुद्धिजीवियों द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं एवं ऐसे मुद्दों को स्पष्ट किया है कि किस प्रकार युगों से जाति व्यवस्था स्वतः कायम है और इसके चिर-स्थायित्व के लिए ऐसी कौन सी शक्तियाँ हैं जो समग्र रूप से उत्तरदायी हैं।

28.2 जाति की परिभाषा

जाति शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन शब्द "कास्टस" से हुई है जिसका अर्थ है "शुद्ध"। पुर्तगाली शब्द "कास्टा" जिसका अर्थ मूल वंश, वंश परंपरा या शुद्ध स्टाक है। लेकिन सत्रहवीं शताब्दी तक "कास्ट" शब्द का प्रयोग इसके लिए भारतीय नजरिए से नहीं किया गया। लेकिन अब भारतीय भाषा में जो इस शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है वह सर्वाधिक प्रचलित है और इसने बाकी के इसके सभी अन्य प्रयोगों को प्रभावित किया है। चूँकि जाति पर भारतीय विचार को स्पष्ट रूप से नहीं समझा गया, इसलिए शब्द को भारत की जाति

के साम्य में यूरोप के श्रेणीबद्ध वर्गों पर निर्बन्ध रूप लागू किया गया जो कि स्वयं की सामाजिक रूप से एक अलग पहचान के रूप में रखते हैं। पुर्तगालियों ने भारतीय आस्था को व्यक्त करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया क्योंकि उनका मानना था कि ऐसी प्रथा रक्त की शुद्धता को कायम रखने पर लक्षित है।

एक तरफ भारत के संबंध में विशेष रूप से सामाजिक स्तरीकरण की समग्र पद्धति को विस्तृत रूप से व्यक्त करने में शिक्षार्थी का ध्यान इस ओर खींचा जाता है जबकि दूसरी ओर इसका प्रयोग समग्र पद्धति के चार कमोबेश विशिष्ट पहलुओं को व्यक्त करने के लिए किया जाता है अर्थात् वर्ण, जाति और गोत्र।

अंग्रेजी शब्द "कास्ट" का अविचारित प्रयोग निरंतर संभ्रांति का स्रोत रहा है। मनु स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वर्ण सिर्फ चार अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। पाँचवाँ वर्ण कोई भी नहीं है जबकि वे पचास से अधिक जातियों की बात को मानते हैं। मनु के अनुसार वर्ण ऐसे चार प्रभाग हैं जिनमें जातियों को समूहों में वर्गीकृत किया गया है। लेकिन बाद के बुद्धिजीवी इस ओर इशारा करते हैं कि यहाँ तक कि मनु भी जाति को वर्ण से जोड़ने की गलती करता है। इस तथ्य के कारण उलझन उत्पन्न होती है कि ब्राह्मण को वर्ण और जाति अर्थात् दोनों नामों से पुकारा जा सकता है।

रिस्ले के अनुसार, "जाति को ऐसे परिवारों या परिवारों के समूहों के संग्रहण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनका एक सामान्य नाम होता है, कल्पित पूर्वज से प्राप्त वंश का दावा जो कि मानवीय या लौकिक हो सकता है और उसी के पद चिह्नों का अनुसरण करना और उन्हीं के सम्मान को कायम रखते हुए ऐसा समुदाय सृजित करना जो उन्हीं के मत पर ही कायम रहे। ऐसा नाम आमतौर पर किसी विशिष्ट व्यवसाय से संबद्ध होता है या उसमें उस व्यवसाय की झलक होती है। जाति एक नजरिए से सजातीय होती है कि ऐसे सामान्य नाम से जाने जाने वाले बड़ी संख्याक लोग इस घेरे से बाहर विवाह नहीं कर सकते लेकिन इस घेरे के भीतर आमतौर पर ऐसे बहुत से छोटे घेरे होते हैं जिनमें से भी प्रत्येक सजातीय होता है। केतकर सामाजिक समूह के रूप में जाति को इस तरह परिभाषित करते हैं जिसकी दो विशिष्ट विशेषताएं होती हैं:

- 1) सदस्यता ऐसे लोगों तक सीमित है जो सदस्यों से जन्मे हैं और जो आगे भी ऐसे ही जन्म लेते रहेंगे।
- 2) सदस्यों को समूह से बाहर विवाह करने की इजाजत नहीं होती और ऐसे सामाजिक कानून का पालन करना उनके लिए अत्यावश्यक होता है। ऐसे समूहों में से प्रत्येक का विशिष्ट नाम होता है और इसी नाम से समूह को पुकारा जाता है। ऐसे बहुत से छोटे-छोटे समूहों को एक सामान्य नाम के अंतर्गत एक समूह में रखा जाता है जहाँ ऐसे विस्तृत समूह बड़े समूहों के उपसमूह होते हैं जो होते तो विस्तृत हैं और जिनके अपने अलग नाम होते हैं।

बॉक्स 28.1 : जाति व्यवस्था पर विचार

गाल्ट का कहना है कि जाति ऐसा सगोत्र समूह या ऐसे समूहों का संग्रहण है जिनका अपना एक सामान्य नाम होता है और जिसकी मूल उत्पत्ति उनके पारंपरिक व्यवसाय से होती है और जिससे एक ऐसा समुदाय बन जाता है जिसमें सभी की एक जैसी पहचान होती है और जिसके मूल बिंदु समाज के किसी अन्य वर्ग की तुलना में आपस में अंतःसंबद्ध होते हैं।

बतई की जाति की परिभाषा के अनुसार, सगोत्र एवं वंशागत सदस्यता से प्राप्त नाम पर आधारित व्यक्तियों का समूह जिनकी जीवन शैली विशिष्ट किस्म की होती है और जिसमें उनके पारंपरिक व्यवसाय की झलक होती है और जो कमोबेश सोपानक्रम पद्धति में विशिष्ट आनुष्ठानिक स्थिति से जुड़ी होती है।

एम. सेनार्ट ने जाति को ऐसे घनिष्ठ संघ के रूप में परिभाषित किया है जो कि पूर्णतया वंशागत नियमों पर टिका है और जिसकी अपनी मूल परंपरा है जिसमें उनके मुक्त संगठन का अपना मुखिया एवं परिषद होती है जो कि कभी-कभार बैठकों में एक दूसरे से मिलते हैं और कई महोत्सवों पर इकट्ठा होते हैं। इन सभी का सामान्य व्यवसाय होता है जो कि विवाह या भोजन या आनुष्ठानिक शुद्धता के कारण सामान्य होता है और जिसमें मुखिया का पूर्ण अधिकार होता है और जो जाति पर कड़ी पाबंदियाँ लगाता है और जिनका उल्लंघन करने पर वह समूह से व्यक्ति को निष्कासित भी कर सकता है।

नेस्फील्ड के अनुसार जाति ऐसे समुदाय का वर्ग है जो किसी अन्य वर्ग से किसी तरह का कोई संबंध नहीं रखता और सिवाय अपनी जाति के किसी अन्य जाति से न तो खान-पान जैसे संबंध रखते हैं और न ही उनमें विवाह करते हैं।

मजुमदार एवं मदन के अनुसार जाति की परिभाषा इस प्रकार है: जब कुछ लोग मिलकर भौतिक एकजुटता की बजाय अपने सामान्य हितों और काम करने के सामान्य तरीकों के कारण समूह बनाते हैं जिसके परिणामस्वरूप समाज में उच्च या निम्न समूहों की उत्पत्ति होती है। ऐसे समूहों को प्रतिष्ठा समूह कहते हैं। यदि ऐसे समूह में प्रवेश खुला है और कोई निश्चित शर्तों को पूरा करके जैसे कोई उपाधि की प्राप्ति करके या प्रवेश शुल्क भरके या निश्चित आमदनी अर्जित करके इसका सदस्य बन सकता है तो ऐसे प्रतिष्ठा समूह को वर्ग भी कहा जा सकता है। यदि भर्ती निःशुल्क नहीं है अर्थात् यदि प्रतिष्ठा समूह किसी अन्य निकाय के लिए खुला नहीं है बल्कि इसके सदस्य सिर्फ वे हैं जिनके पास कुछ निश्चित योग्यता या गुण हैं जिनकी प्राप्ति किसी अन्य सदस्य द्वारा नहीं की जा सकती तब ऐसे समूह को जाति कहते हैं।

फ्रांसीसी लेखक बुगले की अंतिम राय है कि जाति व्यवस्था समग्र समाज को बहुत से वंशानुगत समूहों में विभाजित करता है जो कि आपस में एक दूसरे से भिन्न हैं और तीन विशेषताओं से एक दूसरे से जुड़े हैं:

- 1) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विवाह एवं संपर्क के मामलों में पृथक्करण, (खान-पान) भी अलग;
- 2) श्रम विभाजन अर्थात् प्रत्येक समूह अपनी निजी परंपरा से अपनी एक अलग पहचान बनाता है। उनका ऐसा व्यवसाय होता है जिससे निश्चित सीमा तक ही वे अलग हो सकते हैं; और
- 3) अंततः सोपानिकी जिससे समूहों को अपेक्षाकृत उच्च या निम्न दर्जा दिया जाता है।

यह परिभाषा व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को दर्शाती है।

जिस तरह दशकों से विविध बुद्धिजीवियों ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं उसी तरह जाति व्यवस्था के उद्भव के भी बहुत से सिद्धांत हैं।

28.3 जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धांत

जैसाकि उपर्युक्त विविध परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भारत में जाति एक सामाजिक संस्था है जो कि हिंदू धर्म की संस्वीकृति एवं इसके ताने-बाने से बनी है। जाति की सदस्यता अनिवार्य है और इसमें अपनी मर्जी नहीं चलती। जन्म से यह मनुष्य को मिलती है।

व्यक्ति विशेष के लिए अपनी जाति को बदलना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। प्रत्येक जाति को अपनी संस्कृति की विशिष्ट परंपरा पर गर्व होता है और प्रत्येक जाति बड़ी दृढ़ता

से इसका संरक्षण करती है। रीति-रिवाजों से कुछ हद तक ये एक जाति से दूसरी जाति में भिन्न होते हैं और कई मामलों में ये अन्य जातियों की तुलना में विपरीत होते हैं। जाति व्यवस्था अपने प्रत्येक व्यक्ति को कुछ नियम भी प्रदान करती है जिन्हें उसे भोजन, विवाह, तलाक, जन्म, दीक्षा एवं मृत्यु के समय उनका पालन करना पड़ता है।

जाति के दंड एवं आलोचना सभी सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक गतिविधियों को अभी भी शासित करते हैं।

अभ्यास 28.1

आपकी राय में जाति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू कौन-सा है? नोट बुक में अपना उत्तर लिखने से पहले समग्र इकाई का अध्ययन करें।

यह स्पष्ट है कि सामाजिक स्तरीकरण की ऐसी पद्धति समाज को हजारों, लघु, वंशागत एवं सगोत्र समूहों में विभाजित करती है। जहाँ प्रत्येक समूह के अपने विशिष्ट रीति-रिवाज एवं व्यवहार हैं जो मिलकर शोपानिकी को गठित करते हैं। जाति का ऐसा प्रत्येक समूह एक या अधिक पारंपरिक व्यवसाय से संबद्ध है और जो कि सुस्पष्ट श्रम विभाजन के साधनों से दूसरों से जुड़ा हुआ है।

जाति व्यवस्था जिस पर हिंदू समाज की पारंपरिक व्यवस्था आधारित है, माना जाता है कि वह स्मरणातीत रूप से प्राचीन है। वह मानव समझ से भी पहले की बात है। जाति संरचना की जटिल प्रकृति इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि इतिहास में शताब्दियों से घोर एवं मेहनतकश शोध करने के बाद भी हम ऐसी किसी ठोस विवेचना पर नहीं पहुंचे हैं जिसने कि भारत में इस अनूठी पद्धति के गठन एवं विकास में अपना योगदान दिया हो। जैसा कि डी.एन. मजुमदार टीका करते हैं। कि विषय पर जितने लेखक हैं जाति व्यवस्था के उद्भव के संदर्भ में उतने ही सिद्धांत हैं।

1931 में हुई भारतीय जनगणना ने निम्नलिखित पाँच सिद्धांतों को जाति के उद्भव के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। अतः अपने प्रयास को सरल बनाने के लिये हम भी उन संदर्भों की चर्चा करेंगे।

क) दैवीय शुरुआत

यह माना जा सकता है कि अधिकांश धार्मिक प्राधिकार शास्त्र एवं पुराणों ने जाति व्यवस्था की दैवीय शुरुआत का समर्थन किया है। इसलिए हिंदुओं में आम भावना है कि ईश्वर के आदेश या उसकी इच्छा से इसकी स्थापना की गई है और इसलिए इसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। ऋगु वेद में "पुरुष सूक्त" के अनुसार लोग चार जातियों (वर्णों) से संबद्ध हैं जोकि पुरुष (रचियता) के चार अंगों से बनी है। ब्राह्मण इस (पुरुष) का मुख है, राजन्या (क्षत्रिया) इसकी भुजाएँ हैं, वैश्य इसकी जंघा है और शूद्रों की उत्पत्ति इसके पाद से हुई है।

इस नजरिए को धर्मशास्त्रों, स्मृतियों एवं पुराणों के अधिकांश भागों में भी अभिव्यक्त किया गया है। मनु जिसकी उद्घोषणा को प्राधिकार के रूप में देखा जाता है, उसने भी इस नजरिए पर अपनी हामी भरी है। वह आगे दावा करता है कि विविध जातियों की उत्पत्ति पहले चार वर्णों के आपस में मिलने, बाद में इनके वंशजों के बीच संबंध बनने और इसके साथ-साथ पवित्र रीतियों के कड़ाई से पालन न करने की वजह से इनका अवमूल्यन होने से हुई है। इसके अलावा मनु का ग्रंथ दस विश्व के पहले युग के ऋषियों द्वारा जाति के हवाले की बात भी करता है अर्थात् मारीचि, अत्रि, अंगीरा, पुलस्तया, पुलाहा, ऋतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु एवं नारदा। महाभारत में भी विविध दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त किया गया है। शांतिपर्व में भृगु का दावा है कि विश्व की रचना ब्रह्मा ने की है और बाद में कार्यो

के फलस्वरूप पूरा विश्व जातियों में विभाजित हो गया। लेकिन महाभारत में यह कहा गया है कि भगवान कृष्ण ने अपने मुख से ब्राह्मणों की रचना की, क्षत्रियों की उत्पत्ति उनकी भुजाओं से हुई और वैश्यों की उनकी जंघा से और शूद्रों की व्युत्पत्ति उनके चरण से हुई है। भागवत गीता में कहा गया है कि जातियों का चार स्तरीय विभाजन ईश्वर द्वारा उनके गुणों एवं कर्तव्यों के आधार पर हुआ है।

ख) कर्म और आत्मा का देहान्तरण

इसके बाद कर्म और आत्मा का चोला बदल का सिद्धांत है जो कि जाति व्यवस्था की पुष्टि करने का प्रयास करता है। व्यक्ति की विविध स्थितियाँ अर्थात् उच्चतम, मध्यम एवं निम्नतम सभी कर्मों से बनती हैं। मनुष्य को जीवन में जो कुछ मिलता है वह उसके पिछले जन्म का फल है। मनुष्य को जो सुख या दुख मिलता है, उसके अपने कर्मों का फल है। बुरे काम का नतीजा भी बुरा होगा चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से किया गया हो या छिपकर। इस जन्म में मनुष्य जो अच्छे बुरे कर्म करता है उसी आधार पर अगले जन्म में वह पक्षी, जंगल जीवन या नीच जाति में जन्म लेता है।

जो अच्छे कर्म करते हैं उन्हें पहले से बेहतर जीवन मिलता है और जो आदर्श जीवन जीते हैं वे जन्म और मृत्यु के चक्र से बाहर निकल जाते हैं और मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। ऐसे जीवन की लालसा में अर्थात् प्रतिफल और न्याय से न केवल मनुष्य को बुरे जीवन से छुटकारा मिलता है बल्कि इससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, पापों से छुटकारा मिलता है और उसके पूर्वजों का भी भला होता है। इस तरह यहाँ तक कि सर्वाधिक नीच व्यक्ति जो कि अति निम्न दर्जे का धंधा करता है वह भी इस विश्वास से संतुष्ट हो जाता है कि उसके मौजूदा जीवन की तकलीफें उसके पिछले जीवन के पापों का फल है और यदि वह चुपचाप इस जीवन में अपने जाति संबंधी कर्तव्यों को निभाता रहेगा तो अगले जीवन में उसे उच्च जाति में जन्म मिलेगा।

बॉक्स 28.2 : जातियों का गठन

हरबर्ट रिसले (1915) द्वारा अपनी पुस्तक "द पीपुल ऑफ इंडिया" में प्रतिपादित उसके जातीय सिद्धांत के अनुसार जातीय अंतर और सगोत्र विवाह से जाति व्यवस्था की मूल उत्पत्ति हुई है। उसके अनुसार, जाति व्यवस्था पर्शिया से इंडोआर्यन के उत्प्रवास के बाद विकसित हुई है जहाँ समाज चार वर्गों — पुरोहित, योद्धा, कृषक एवं शिल्पकारों में विभाजित था और भारत आने के बाद भी उन्होंने इस प्रथा को कायम रखा। गैर-आर्यों से वे संस्कृति एवं जातीय मार्गों का अनुसरण करने में भिन्न थे। इसलिए अपनी उच्च स्थिति को बनाए रखने के लिए उन्होंने अतिविवाह के चलन को अपनाया और "प्रतिलोम" विवाहों पर पाबंदी लगा दी।

रिसले (1915) ने ऐसे छह प्रक्रमों का वर्णन किया है शायद जिससे जातियों का गठन हुआ होगा। ये हैं; मूल लोगों की जनजातियों का हिंदु धर्म के दायरे को ध्यान में रखते हुए या तो उनकी निजी जनजातीय पदनाम या नई जाति के रूप में नामांकन और जाति के उद्भव में व्यवसाय मुख्य कारक रहा है और मूल व्यवसाय में तब्दीली से जाति का उप विभाजन जिससे अंततः एक अलग जाति विकसित हो गई और सुस्थापित आनुष्ठानिक व्यवहारों को नजरअंदाज करने से नई जाति का विकास और कुछ विशेष समूहों की अप्रचलित परंपराओं को संरक्षित करने की प्रवृत्ति और संप्रदायों का उदय जिन्होंने धार्मिक संप्रदायों के रूप में जीवन की शुरुआत की।

क्रोबेर (1930) जातीय कारक की हिमायत करते हैं लेकिन साथ ही साथ धार्मिक, सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक कारकों को भी महत्वपूर्ण मानते हैं।

घुर्ये (1932) ने जाति व्यवस्था को ब्राह्मणवादी व्यवस्था के रूप में स्पष्ट किया है और उसका मानना है कि विजयी गैर-आर्यन जाति शूद्र बन गई जिन्हें आर्यों की धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधि से अलग कर दिया गया।

मजूमदार (1957) का मानना है कि जातियों के आपसी संपर्क और संस्कृति के टकराव से सामाजिक समूहीकरण का जन्म हुआ। उसका यह भी मानना है कि उच्च जातियों ने अपने सदस्यों को विशिष्ट व्यवसाय सौंपे और अपनी ऊँची हैसियत को बनाए रखने के लिए अन्य लोगों को ऐसे व्यवसायों से वंचित कर दिया। इससे सोपानिकी आधारित जाति व्यवस्था का जन्म हुआ।

अतः यह नजर आता है कि जातीय कारक को अधिकांश बुद्धिजीवियों ने स्वीकारा है लेकिन फिर भी जाति व्यवस्था के विकास में इसे सिर्फ एकमात्र कारक के रूप में नहीं देखा जा सकता।

जाति की मूल उत्पत्ति के विषय पर यूरोपियाई लेखकों को जातियों, उच्च और निम्न और सजगता और असजगता से जाति के साथ अपने निष्कर्षों को जोड़ने की बात का पता था। विअल लिखते हैं कि भारत का समग्र इतिहास प्राचीनतम समय को गठित करता है और जो कि रंग पूर्वाग्रहों की लंबी दास्तां रहा है और जितनी क्रूरता इसमें रही है शायद बाकी के जगत में इतनी नहीं रही होगी। उसका मानना था कि आर्य जाति जो कि 'श्वेत' थी ने जाति की लौह व्यवस्था को शायद इसलिए विकसित किया ताकि प्रभुत्व जाति को 'श्याम' निम्न जाति से मिलने से रोका जा सके।

डब्ल्यू. जे. थॉमस आबादी में चिह्नित शारीरिक संकेतों पर ध्यान केंद्रित करते हैं और उच्च और निम्न सांस्कृतियों के बीच के संबंधों को आपस में जोड़ते हैं और उनके अनुसार यही जाति विशिष्टता का आधार है।

डुडले बक्सटन का मानना है कि भारतीय प्रायद्वीप की जटिल प्रजातियों को विभक्त करने में जाति अभी भी सहायक है।

गिल्न का मानना है कि यह संभव है कि विविध आबादियों के बीच प्रजातीय विभेदन के मद्देनजर भारत में जाति की उत्पत्ति हुई।

मैक्लेवर का भी जाति संरचनाओं के मूल वंशीय सिद्धांतों के प्रति झुकाव है। उसका कहना है कि जाति की उत्पत्ति शायद एक सगोत्र समुदाय को दूसरी जाति पर थोपने का परिणाम है और मूल वंश के धर्म और गौरव से शायद ऐसे व्यवहार को थोपा गया होगा।

जाति के गठन में रंग के प्रश्न पर भी विचार किया गया है। वर्ण व्यवस्था की जड़ों में रंग का प्रश्न वर्ण शब्द से स्पष्ट है जिसका अर्थ रंग है।

वर्ग, जिसने जाति को आपस में मिलाने की बात को नकारते हुए रंग की पूर्ण शुद्धता को कायम रखा, ने सामाजिक पैमाने पर श्रेष्ठता हासिल की। स्थिति सामाजिक समूहों द्वारा कायम पृथक्करण के विस्तार पर भी निर्भर करती है। ब्राह्मण श्वेत वस्त्र पहनते थे, क्षत्रिय लाल और वैश्य पीले और जैसा कि महाभारत में वर्णित है, शूद्र काले वस्त्र पहनते थे। तीन उच्च वर्णों ने महत्वपूर्ण व्यवसायों से स्वयं को जोड़कर उच्च स्थिति बनाए रखी।

कार्वे, हालांकि इस नजरिए को स्वीकार नहीं करते कि वर्ण का मूल अर्थ 'रंग' है। उसका तर्क है कि यदि पिछले साहित्य और व्याकरण की गहराई से जांच की जाए तो वर्ण का अर्थ 'वर्ग' से है। कार्वे इस बात पर कायम है कि बाद में वर्ण शब्द का अर्थ 'रंग' से लिया गया और प्राचीन समय में चार वर्णों को 'रंग' के आधार पर विभाजित किया गया।

जाति संरचना के गठन में सामाजिक कारक जिसे बहुत से बुद्धिजीवियों ने माना है और इसी तरह जाति व्यवस्था के विकास को सिर्फ मूल वंश के आंधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

ग) व्यावसायिक सिद्धांत

नेस्फील्ड (1885) द्वारा प्रतिपादित व्यावसायिक सिद्धांत इस बात का समर्थन करता है कि इस व्यवस्था के विकास के लिए व्यवसाय सिर्फ एकमात्र कारक है। उसके अनुसार इससे पहले पुरोहितगिरी जैसे व्यवसाय पर सिर्फ ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं था। लेकिन धीरे-धीरे जब भजन एवं धार्मिक अनुष्ठान अधिक जटिल बन गए तो कुछ गिने-चुने लोग इस कार्य में निपुण हो गए और ब्राह्मण बन बैठे। त्याग या बलिदान के महत्व के कारण ऐसे लोगों का अधिक आदर होने लगा। बाद में धीरे-धीरे यह व्यवसाय वंशानुगत बन गया। इसके बाद लोगों के अन्य वर्ग भी विशेषाधिकार की प्राप्ति के लिए स्वयं को ऐसे कार्यों में संगठित करने लगे। यह कदम उन्होंने आत्म-रक्षा के लिए उठाया और ऐसे लोगों की नकल करने में जिन्हें वे उच्च सम्मान देते थे।

बॉक्स 28.3 : रैंकिंग एवं जाति

विविध व्यवसायों ने विविध जनजातियों के लोगों को एक समूह में बाँधकर जातियाँ बनाई जिसमें तब सगोत्र के सिद्धांतों को अपनाया गया और जिसमें पुरानी जनजातियों के रीति रिवाजों को लागू नहीं किया गया और इस तरह पृथक इकाइयों में ये मजबूती से बंध गए। किसी भी जाति की रैंकिंग उच्च या निम्न के रूप में इस बात पर निर्भर करती है कि जाति किस तरह की संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रही है अर्थात संस्कृति उच्च किस्म की है या पिछड़ी हुई है। इस तरह, भारतीय जातियों का उच्च या निम्न रूप में गठन इस तरह ही बना है। अतः शिकार करना, मछली पकड़ना, टोकरियाँ बनाना आदि जैसे सर्वाधिक प्राचीन धंधों को करने वाली जातियों को निम्नतम माना गया और धातु का काम करने वाले, कृषकों एवं पाठकों को उच्च माना गया जबकि उच्चतम जाति में पुरोहित एवं अध्यापकों को रखा गया।

स्लेटन ने अपनी पुस्तक 'इंडियन एलिमेंट्स इन इंडियन कल्चर' में इस तथ्य पर जोर दिया कि उत्तरी भारत की तुलना में दक्षिणी भारत में जाति की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक मजबूत थी और उसका सुझाव है कि आर्यों के हमले से पहले भारत में जाति में उत्पत्ति हुई थी क्योंकि व्यवसाय पुरतैनी बनते जा रहे थे और समान व्यवसाय वाले वर्ग में विवाह माता-पिता द्वारा तय किए जा रहे थे क्योंकि लैंगिक परिपक्वता जल्द विकसित हो गई और व्यापार संबंधी गुप्त बातों को संरक्षित किया गया। जादुई एवं धार्मिक समारोहों के परिणामस्वरूप भी पूर्ण व्यावसायिक समूहों का निर्माण किया गया और जहाँ इनके बाहर विवाह तय करने पर रोक थी। आर्यों के हमले ने ऐसी प्रवृत्ति को सुदृढ़ किया जिसमें रंग के अंतर के बीच की दूरी कम होने लगी और जातियों को समाज में उनके महत्व के अनुसार श्रेणीबद्ध किया जाने लगा। वह भारत में पूर्व आर्य समाज में पुरोहित जादूगरों की व्यवस्था की मौजूदगी को भी कायम रखता है।

डेंजिल लिटसन का मानना है कि जाति, जनजातियों, मूल, प्रकार्यात्मक शिल्प संघ एवं विहिकल धर्म के संयोजन से उभ्रा है और यह जनजाति पर विशेष जोर देता है अर्थात जनजाति के जीवन में जबर्दस्त मोड़ जब यह अपने जंगली और रोमांसकारी जीवन का त्यागकर अपने आर्थिक जीवन के लिए मुख्य रूप से किसी विशिष्ट व्यवसाय को अपनाती है। यह जाति इतिहास में शिल्प संघ अवस्था की शुरुआत है और यह विश्व में सभी लोगों की कुछ निश्चित समयावधि में आर्थिक प्रगति को दर्शाती है। व्यावसायिक संघों के शिल्प संघों के गठन से विविध शिल्पकलाओं के महत्व और संबद्ध कौशलों को स्वाभाविक रूप से महत्व मिला। मध्यकालीन युग में शिल्पकारों ने देश के सामाजिक जीवन पर अपना प्रभाव जमाने के लिए एक दूसरे से होड़ की। जो शिल्प पुरोहितों की तरह का कार्य करते थे वे अपनी व्यावसायिक स्थिति को पुरतैनी किस्म का बनाना चाहते थे और इससे सगोत्र इकाइयों का गठन होने लगा क्योंकि अधिकांश शिल्प अपनी सामाजिक स्थिति को

संरक्षित करना चाहते थे और जो विशेषाधिकार उन्हें मिले थे, उन्हें वे कायम रखना चाहते थे और अपने सदस्यों के लिए इन्हें स्थायी रूप से बनाए रखना चाहते थे। बाद में बहुत से शिल्पों ने इस बात का अनुसरण किया और इस तरह सोपानक्रम संगठन स्वतः ही स्थापित हो गया।

चैपल और कून ने जातियों की मूल उत्पत्ति को आदिवासियों के विलयन के रूप में देखा है और ये नये व्यवसायों के आविर्भाव के संदर्भ में नयी जातियों के गठन को भी स्पष्ट करते हैं।

घ) जनजातियाँ और धार्मिक सिद्धांत

अत्यधिक प्राचीन समय से जनजातियाँ धीरे-धीरे जातियों का रूप धारण करती आ रही है। यह बदलाव बहुत से तरीकों से नजर आता है और माना जाता है कि आज की सर्वाधिक निम्न जातियाँ पहले जनजातियाँ थी।

रिस्ले ने ऐसे चार प्रक्रमों का उल्लेख किया है जिससे जातियों के रूप में जनजातियों का रूपांतरण प्रभावित होता है। ये प्रक्रम हैं :

- 1) मूल जनजाति के अग्रणी लोग किसी तरह अपनी दुनिया से बाहर निकल कर स्वतंत्र भूपति बन गए और स्वयं को किसी जानी मानी जाति में नामांकित कराने में सफल हो गए।
- 2) बहुत से आदिवासियों ने हिंदू धर्म के सिद्धांतों को अपना लिया और वैष्णव बन गए और अपने जनजातीय नाम का त्याग कर दिया।
- 3) समग्र आदिवासियों या उनके एक भाग ने किसी नई जाति की शैली के अंतर्गत हिंदूवाद की श्रेणियों में स्वयं को नामांकित किया जिससे पुरानी पहचान की तुलना में उनका मौजूदा नाम एवं स्तर बिल्कुल अलग है।
- 4) आदिवासियों की समग्र जनजाति या भाग धीरे-धीरे अपनी जनजातीय पहचान को छोड़े बिना हिंदू धर्म में परिवर्तित हो गया। रिस्ले, पश्चिम बंगाल की भूमिज एक शुद्ध द्रविड़ जाति के मामले का उल्लेख करता है जिसने अपनी मूल भाषा को खो दिया और अब बांग्ला बोलती है। वे अपने देवी-देवताओं के साथ-साथ हिंदू देवी देवताओं को भी मानते हैं और इनमें से अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध पारिवारिक पुरोहित के रूप में ब्राह्मणों को रोजगार देते थे। ये अभी मुड़ा और सैंथालों जैसे एक अलग असगोत्र भाग को कायम किए हुए हैं और इन्होंने टोटमों को भूलना शुरू कर दिया है और इनके नाम भी धीरे-धीरे नये पदनामों की गूंज में छिपते नजर आएंगे। इस तरह जनजाति जाति बन गई होगी और अपने मूल रीति-रिवाजों को भूलने लगी होगी।

इन चार प्रक्रमों में मजूमदार ने एक पाँचवाँ प्रक्रम जोड़ा है जिसमें आदिवासी या अर्ध-आदिवासी जनजाति का कोई भी सदस्य किसी विशिष्ट जाति या गोत्र को अपनाता है और स्वयं को उस विशिष्ट जाति के सदस्य के रूप में नामांकित कराने में सफल हो जाता है और धीरे-धीरे उस जाति के सदस्यों से विवाह जैसे संबंध भी कायम कर लेता है। उसकी संपत्ति और प्रभाव उस जाति के लोगों को आकृष्ट करता है जिसका वह सदस्य बनना चाहता है और इस तरह लंबे समय में वह उस जाति का स्थायी सदस्य बन जाता है। हिंदू जातियों से सांस्कृतिक संपर्कों से जनजातियों ने हिंदू आस्थाओं, आनुष्ठानों एवं रीति-रिवाजों को अपना लिया और इस तरह वे हिंदू त्योहारों में भाग लेने लगे और हिंदू मंदिरों में जाने लगे।

आदिवासियों का धीरे-धीरे उच्च हिंदू वर्ग की ओर रुख करना भारत में सामाजिक उदगम की मुख्य विशेषता है जिस पर सरकारी कार्यालयों ने गौर किया है और इस पर अपनी टिप्पणी भी की है।

भुइया एक उत्कृष्ट उदाहरण देते हैं कि किस प्रकार आदिवासियों की स्थिति से जाति या समूह अंतर और विशिष्टताएं धीरे-धीरे आगे उभरी जब लोगों ने पुराने रिश्तों का त्याग करके स्वयं को ईश्वरीय एवं सामाजिक संदर्भ में नया महत्व दिया। इसी तरह मुंडा सामाजिक संगठन और 'गोत्र' और 'वर्ण' के हिंदू सामाजिक संगठन में भी काफी हद तक समानता है। मुंडा अब बंगाल, बिहार और उड़ीसा के कुछ विशेष भागों में पाए जाते हैं जहाँ वे तीन नामों अर्थात् मुंडा, संथाल और होस जनजाति के अंतर्गत जाने जाते हैं। संथाल चार प्रमुख गोत्रों में विभाजित हैं जिनमें से एक गोत्र का कुछ पता नहीं है। शायद ऐसा खोया हुआ गोत्र पूरी तरह ब्राह्मणवादी या क्षत्रियवादी बन गया है और इसके वंशज सच्चाई बताना नहीं चाहते।

च) परिवार और विवाह

सेनार्ट द्वारा प्रदत्त विवेचना का मानना है कि भारतीय जाति व्यवस्था का मुख्य आधार बहिर्विवाह है। उसकी राय में जाति, प्राचीन आर्य आस्था का सामान्य विकास है जिसने एक ही गोत्र में विवाह की मनाही, निम्न जातियों के स्पर्श पर अशुद्ध होना और दूसरी जातियों से खान-पान निषेध जैसी भारत में मौजूद विशिष्ट दशाओं के कारण एक विशिष्ट रूप धारण कर लिया। उसने इस बात को पहले से मान लिया है कि भारत ईरानी अवधि में वर्ण विभाजन के रूप में जाति व्यवस्था की शुरुआत, ऋगु वैदिक भारत में समाज के चार भागों में बँटे होने के कारण हुई है।

रिस्ले इस बात का उल्लेख करते हैं कि आर्यों ने श्याम प्रजाति से विवाह जैसे संबंध कायम करने पर घोर वैर-भाव दर्शाया है और ऐसे मेल को उन्होंने वर्जित माना है लेकिन फिर भी अंतर जाति विवाहों को रोका नहीं जा सका।

28.4 युगों से प्रचलित जाति व्यवस्था

ऋगु वैदिक समाज मुख्यतया जनजातीय प्रकृति का था। कीथ के अनुसार वैदिक भारतीय मूल रूप से पशुचारी थे और ऋगु वेद के प्रारंभिक भागों से पता चलता है कि यह बात आर्यों के लिए फायदेमंद रही। आर्यों ने हड़प्पा समाज की शहरी आबादी पर हमला बोला और युद्ध में उन्हें जीत लिया। आर्यों और हड़प्पा जाति के लोग बचे थे और अन्य लोगों के बीच एक सामाजिक समायोजन हो गया जिससे स्वाभाविक रूप से कुछ पुरोहित या मुख्य लोग जो बच गए थे उन्हें नये आर्य समाज में पहले की तुलना में निम्न दर्जे का काम मिला। प्रारंभिक इतिहास ऐसे आम आर्यों और पिछली जातियों के बचे-खुचे लोगों के बीच आत्मसातकरण पर कोई खास रोशनी नहीं डालता। शायद उन्हें पहले की तुलना में कम महत्व मिला। संक्षेप में, ऋगु वैदिक आर्य समाज और अथर्व वेद में वर्णित समाज ने सदस्यों में गूढ़ वर्ग विभेदन का अभाव था जो कि आमतौर पर पिछले समाजों में पाया जाता है। शूद्र सामाजिक वर्ग में सिर्फ अथर्व वेद के समय की समाप्ति से ही नजर आते हैं।

आर्य जिनकी चमड़ी सफेद थी, नैन नक्श अच्छे थे और जो अग्नि, इंद्र, वरुण आदि जैसे देवी देवताओं के उपासक थे, दस्यु लोगों से पूरी तरह अलग थे जो कि श्याम रंग के थे और जिनकी चपटी नाक थी और जो अबोधगम्य भाषा बोलते थे और जिनका अपना कोई देवी देवता नहीं था और जो अजीबोगरीब रीति-रिवाजों को मानते थे।

अभ्यास 28.2

जाति के विविध सिद्धांतों को रेखांकित कीजिए। आप इनमें से किसके हक में हैं? अपना उत्तर अपनी नोट बुक में लिखिए।

धीरे-धीरे दयनरों को दास के रूप में लिया जाने लगा। दास का अर्थ ऐसे लोगों से लिया जाने लगा जिन्हें अत्यंत निम्न किस्म के काम करने के लिए दिए जाते थे। शायद दस्यु

(गुलाम) और शूद्र भी मूल रूप से सुप्रचलित जनजातियाँ थी जिन्हें आर्यों ने जीत कर अपने अधीन कर लिया। वैदिक काल (1000 - 600 ई.पू.) के समय में शूद्रों को स्पर्श करना या देखना भी पाप माना जाता था। ऐसी बात सर्वप्रथम सत्पथी ब्राह्मणा में देखने को मिली।

लगभग 600 ई.पू. - 300 ई.पू. के आसपास वैश्य और शूद्रों के बीच का अंतर दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा था। दोनों जातियों के व्यवसाय एक-दूसरे द्वारा अपनाए जा रहे थे। वैदिक काल अब जनजातिवाद से ऊपर उठकर सामंतवाद की ओर अग्रसर होने लगा था। ब्राह्मण एवं क्षत्रियों ने इनके प्रति कई नीतियाँ बनाना शुरू कर दिया। शूद्रों की सामाजिक स्थिति बद से बदतर हो गई। प्रशासनिक कार्यों में शूद्रों के लिए कोई जगह नहीं थी। विधि निर्माताओं ने पुरानी कल्पना पर फिर से जोर देना शुरू कर दिया कि शूद्रों का जन्म ईश्वर के पाद से हुआ था और इसलिए उनके साथ मेल-मिलाप करने, भोजन करने, विवाह जैसे संबंध कायम करने और शिक्षा के क्षेत्र में भी उन पर बहुत सी सामाजिक बंदिशें थोप दी। धर्मसूत्र (500 ई.पू. - 300 ई.पू.) में पहली बार यह बात अभिव्यक्त की गई कि शूद्रों द्वारा छुआ गया भोजन ब्राह्मणों द्वारा स्वीकार्य नहीं होगा। शूद्र किसी तरह के वैदिक संस्कारों आदि में भाग नहीं ले सकते थे। इन्हें इतना तुच्छ माना गया कि यहाँ तक कि कुछ विशिष्ट अनुष्ठानों के मौके पर इनकी मौजूदगी एवं इन्हें देखने को नकारा जाने लगा।

ऐसा कहा गया है कि छुआछूत की उत्पत्ति का संबंध प्रदूषण से है। छुआछूत का मूलबिंदु स्वच्छता एवं धार्मिक अर्थात् दोनों पहलुओं में निहित है। अंततः छुआछूत का विचार कुछ निश्चित व्यवसायों की सैद्धांतिक अशुद्धता से पता चलता है।

शर्मा का मानना है कि छुआछूत की उत्पत्ति का एक मुख्य कारण आदिवासी जनजातियों का सांस्कृतिक पिछड़ापन था जो कि ब्राह्मणों की तुलना में मुख्यतया शिकारी एवं खाद्य संग्रहक थे जबकि दूसरी तरफ ब्राह्मण समाज के सदस्य धातुओं और कृषि के जानकार थे और शहरी जीवन को विकसित कर रहे थे। धीरे-धीरे ब्राह्मण और क्षत्रिय अपने प्राथमिक कार्यों से पीछे हटने लगे और अपनी स्थितियों एवं कार्यों में पुश्तैनी महत्व की ओर प्रवृत्त होने लगे। यजुर्वेद में निशाद, चंडाल और पौत्कस का उल्लेख सर्वप्रथम किया गया। इनमें से चंडालों और निशादों को उत्तर के वैदिक समाज में अछूत माना गया। धर्मसूत्र और पाली अध्याय सामग्री में चंडालों को स्पष्ट रूप से अछूत माना गया है और वैदिक ज्ञान ने समाज के चार-स्तरोँ से इस पाँचवीं जाति को बाहर रखा। इस समय के दौरान वर्ण के आधार पर जिस तरह ब्राह्मण समाज को विभाजित किया गया था उसे विधर्मी संप्रदायों की गतिविधियों द्वारा नीचा दिखाया गया और साथ ही साथ कुछ विदेशी तत्व जैसे बैक्टरीयन, यूनानी, साका, पठान और वुसानास भी यहाँ अपना डेरा जमाने लगे। मनु ने भरसक प्रयास किया है कि ब्राह्मण समाज को संरक्षित किया जाए और इसके लिए उसने शूद्रों के प्रति घोर उपाय बनाने का आदेश दिया और साथ ही साथ वर्ण समाज में विदेशी तत्वों के समावेशन के लिए उचित वंशावली की खोज भी की। अनेक आदिवासी जनजातियों और विदेशी तत्वों को आपस में जोड़ने के लिए वर्णासमकर (वर्णों को आपस में जोड़ने) का भरसक प्रयोग किया गया जितना कि उसके पूर्वजों ने भी नहीं कि होगा। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनमें मिश्रित जातियों को उनके पुश्तैनी कर्तव्यों के संदर्भ में शूद्रों के साथ रखा गया जिनमें से कुछ जातियों ने नाम बदल लिया है और कुछ जातियों का अस्तित्व खत्म हो गया है। वह निम्नलिखित श्रेणियों को स्पष्ट करता है:

क) चार मूल वर्ण।

ख) जातियाँ जो कि शुद्ध और अशुद्ध जातियों के मिश्रण से उत्पन्न हुई थीं।

- ग) पवित्र रीतियों को नजरअंदाज करने पर जिन जातियों ने अपनी स्थिति खो दी।
- घ) ऐसी जातियां जो कि समुदाय से लोगों को बहिष्कृत करने से बर्नीं।
- च) गुलाम और उनके वंशज।
- छ) ऐसे व्यक्ति एवं जिनके वंशजों को चार वर्णों के समुदाय में बाहर कर दिया गया था।

मनु ऐसी पुरानी मिश्रित जातियों का उल्लेख करता है जो कि वर्णों के अंतःमिश्रण से उत्पन्न हुई हैं और वह मिश्रित जातियों की लंबी सूची के लिए समान मूल उत्पत्ति की बात कहती है जिससे कि तीन किस्मों की जातियाँ बनी हैं :

- क) विविध शुद्ध जातियों से निर्मित जातियाँ।
- ख) शुद्ध जातियों के मिश्रण से निर्मित जातियाँ जिनमें कि एक या दूसरी तरफ मिश्रित थीं।

ग) ऐसी जातियाँ जो कि दोनों तरफ से मिश्रित मूल के अभिभावकों से निर्मित हुई हैं।

मनु ने इस बात का समर्थन किया कि उच्च जातियों को चंडाल और स्वापकों से संपर्क बनाने से परहेज करना चाहिए। चंडाल और स्वापकों को ग्रामों से बाहर बसना चाहिए, उनकी एकमात्र संपत्ति में श्वान एवं गधों का समावेश था, उनके द्वारा प्रयुक्त खाद्य बर्तनों को हमेशा के लिए त्याग देना चाहिए। मनु कहता है कि यदि ब्राह्मण चंडाल या अंत्या के संपर्क में जाता है तो वह ब्राह्मणत्व से गिर जाएगा।

विदेशी व्यक्तियों के आगमन से वर्ण पद्धति की जंजीरें ढीली होने लगीं। गुप्ता की विविध पुस्तकें शूद्र और अछूतों के बीच के भेदभाव को कायम रखते हैं। इस अवधि के दौरान न केवल अछूतों की संख्या में बढ़ोतरी हुई बल्कि छुआछूत के व्यवहार में भी तेजी आई। फाहेन (399-414 ई.) बताते हैं कि जब चंडाल शहर या बाजार के द्वार पर प्रवेश करते थे तो वे एक लकड़ी के टुकड़े को बजा देते थे जिससे सभी को उसके आगमन की सूचना मिल जाती थी और वे उनसे दूर हट जाते थे।

हर्ष (647 ई.) की मृत्यु के बाद 712 ई. में सिंध, अरब के कब्जे में आ गया तब से मुस्लिम व्यापारी, यात्री और भाड़े (किराए) के सैनिकों के रूप में निरंतर भारत आने लगे। 11वीं शताब्दी के बाद से मुस्लिम हमलों ने जहाँ देश में नृशंस हत्याओं, जबर्दस्ती इस्लाम को कबूलना और देश में तबाही मचाई और हिंदू धर्म के देवी-देवताओं की मूर्तियों एवं हिंदू मंदिरों की अवमानना की जिससे भारतीय में निरंतर असुरक्षा की भावना ने जन्म ले लिया। हिंदुओं को अपना धर्म नयी ताकतों के समाने डोलता नजर आने लगा। 1000 ई. से पैतृकता के सिद्धांत को महत्व मिलने लगा और प्रतिलोम एवं अनुलोम विवाहों को अनदेखा किया जाने लगा। शूद्रों की स्थिति में सुधार हुआ। यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ लेकिन बौद्धिक रूप से वे पिछड़े ही बने रहे क्योंकि उच्च शिक्षा की प्राप्ति का हक ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों को ही था।

मुस्लिमों के निरंतर हमलों से हिंदू सामाजिक व्यवस्था पर इसका काफी प्रभाव पड़ा। धर्म को बचाने के लिए छोटी उम्र में विवाह की प्रथा को अधिक मजबूत किया गया। 16वीं शताब्दी की शुरुआत में भारत के कुछ हिस्सों में पुर्तगालियों के आगमन से हिंदू धर्म के लोग रोमन कैथोलिक बनने लगे। मध्यकालीन भारत में शंकराचार्य (788-820 ई.) के हिंदू धर्म को पुनः सुदृढ़ करने से जो लोग मुस्लिम एवं ईसाई बने थे, वे पुनः हिंदू धर्म में आ गए। इस सैकट की घड़ी में वैष्णवों और साईवादियों ने हिंदू धर्म की कमान संभाली। इस दौरान कई भक्ति आंदोलन चलाए जिनमें आचार्य रामानुज, माधवचार्य, वल्लभचार्य,

कबीर, नानक, चैतन्य, तुलसी दास और ऐसे बहुत से संतों के नाम प्रमुख हैं जिन्होंने भारत में इस्लाम के प्रसार पर रोक लगाई। बहुत से धर्म परिवर्तन करने वालों ने पुनः हिंदू धर्म में शरण ले ली।

जब भारत में अंग्रेजों का शासन शुरू हुआ तो हिंदू सामाजिक व्यवस्था ने बहुत से अवांछनीय विशेषताओं को अपने में समेट लिया। अंग्रेजी शासको की विविध नीतियों ने मुख्य रूप से कानून और व्यवस्था के रखरखाव को अधिक मजबूती दी। अंग्रेजों ने मुख्य रूप से करों को एकत्र करने और अंग्रेजी वस्तुओं के लिए अप्रतिबंधित बाजार कायम करने पर जोर दिया। उनके केंद्रीकृत प्रशासन ने देश की पुरानी अर्थव्यवस्था का पूरी तरह झंझोर दिया। पुरानी ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो कि लंबे समय तक राजनीतिक द्वंद्वों से अप्रभावित थी, और जिसने जाति व्यवस्था को काफी सुदृढ़ता दी थी, अंग्रेजी शासन के तहत इसमें खलबली मच गई। भू नीति ने भूस्वामियों के नये वर्ग की सर्जना की जिसमें लाखों काश्तकार और कृषि श्रमिकों की श्रेणियों में बंट गए। जाति के आधार पर हिंदू समाज के बंटवारे ने जिससे इसके विविध जाति समूहों को रोजगार एवं सुरक्षा दी थी, वह भी प्रभावी ढंग से ब्रिटिश नीति को चुनौती नहीं दे सका। पहली बार जाति व्यवस्था को इसके विदेशी शासकों से गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा था।

पश्चिमी शिक्षा और सामाजिक सुधारों से छुआछूत का उन्मूलन हुआ। ऐसे आंदोलन हिंदू सामाजिक व्यवस्था को जाति आधारित संकीर्णता से उबारने का एक प्रयास था ताकि अछूतों के प्रति उच्च जाति के लोगों का रवैया बदले। शहरी की वृद्धि, शहरी क्षेत्रों में उद्योगों का निर्माण, रेलवे की पेशकश जैसी बातों से अनेक गैर-जाति व्यवसायों की उत्पत्ति हुई। आपराधिक न्यायालयों के निर्माण ने जाति व्यवस्था को खत्म कर दिया और इससे जाति पंचायतों की भी समाप्ति हो गई। लेकिन इसके साथ-साथ भारत के लोगों के विविध वर्गों में ब्रिटिश नीति एकता एवं संसक्ति नहीं जुटा पा रही थी। इनकी नीति विभाजन पर आधारित थी या उनके दमन पर आधारित थी। लोग चाहे किसी भी स्तर के हों, चाहे धर्म, क्षेत्र, भाषा या जाति के, उन्हें दबाया जाए या उनमें फूट डाली जाए। अलग निर्वाचन क्षेत्रों या गैर-ब्राह्मण जातियों को दक्षिण में मान्यता देने से न केवल भारत में जहाँ एक समय अखंडता कायम थी वहाँ अशांति फैल गई बल्कि प्रांतों, धर्म मतों के बीच ईर्ष्या पैदा हो गई जिससे जातियों के बीच के अंतर और कड़े हो गए।

अंततः हम देखते हैं कि निरंतर समायोजन और विस्तृत एकीकरण का कार्य सदैव चल रहा है। उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था सदियों से अधिकाधिक कठोर बनती आई है। ऐसे बल जो जाति की मूल उत्पत्ति का कारण हैं, ऐसे बल भी हैं जिससे जाति व्यवस्था को स्थायित्व निरंतर बना हुआ है।

28.5 जाति: एक पृथक परिघटना नहीं

सामाजिक प्रथाएं या संस्थाएं जो कि एक या दूसरे नजरिए से जाति से मिलती-जुलती हैं, उन्हें कहीं और नहीं पाया जा सकता। किसी अन्य स्थान की तुलना में भारत में जाति व्यवस्था अपने सही स्वरूप में कायम रही है। लेकिन होकार्ट दर्शाते हैं कि जैसा कि माना गया था भारतीय जाति व्यवस्था एक पृथक परिघटना नहीं है।

इसके तुलनात्मक स्वरूप पोलिनेशिया और मेलनेशिया में अभी भी कायम हैं और इन्हें प्राचीन यूनान, रोम और आधुनिक मिश्र में देखा जा सकता है।

ह्यूटन विश्व के विविध भागों में जाति के एक या अन्य पहलुओं से मिलते-जुलते शब्दों को पाते हैं। ये भाग हैं, सिलोन, फिजी, मिश्र, सोमाली, रवांडा और आधुनिक अफ्रीका में अरुंडी और बर्मा।

घुर्ये भारत से बाहर भी मिस्र, पश्चिमी एशिया, चीन, जापान, अमेरिका, रोम और जनजातीय यूरोप जैसे देशों में भी जाति के तत्वों को पाते हैं।

प्राचीन पर्शिया में पुरोहित, योद्धा, कृषक और कुलीन वर्ग में देश बंटा हुआ था। यहाँ जो अंतर है वह सिर्फ चौथे वर्ग को लेकर है जो कि पर्शिया में शिल्पकारों का था और भारत में शूद्र वर्ग का है। पश्चिमी रोमन साम्राज्य में थियोडिसन कोड द्वारा सृजित समूहों के रूप में व्यावसायिक पेशेवर्गीय समूह थे। ऐसे समूह तभी बनाए गए होंगे जब समाज में सामाजिक विखाडन के अवयव मौजूद रहे होंगे।

स्वीडन में सत्रहवीं शताब्दी में वर्ग से बाहर विवाह करना एक अपराध माना जाता था। शेख, सैय्यद और पठानों की उच्च जाति के लोग अपनी वंशावली के प्रति काफी सजग थे और अन्सारी और जुलाहों जैसी निम्न जाति के मुस्लिमों से वैवाहिक संबंध कायम करने से कतराते थे। जर्मन विधि के अनुसार किसी भी उच्च दर्जे के पुरुष का ऐसी महिला से विवाह होने पर उस महिला को पुरुष के समान की हैसियत का दर्जा नहीं मिलेगा और उसकी संपत्ति में उसे या उसके बच्चों का कोई हक नहीं होगा।

28.6 सारांश

अब हमने महसूस किया है कि जाति की उत्पत्ति का मुख्य सिद्धांत हिंदू पौराणिक कथाओं में निहित है। धार्मिक ग्रंथ भारत में जाति व्यवस्था की कुदरती शुरुआत से सहमत हैं। यहाँ माना जाता है कि उच्च जाति में जन्म का कारण पिछले जन्म में अच्छे कर्म करना है। अधिकांश लोग खासकर उच्च जातियाँ अपनी श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए अपनी निजी जाति में ही विवाह करने की चेष्टा करती हैं।

28.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

श्रीनिवास एम.एन., 1962, *कास्ट इन मॉडर्न इंडिया एंड अदर एसेज*, लंदन, एशिया पब्लिशिंग हाउस।

लर्नर डेनियल 1958, *द पार्सिंग अवे ऑफ ट्रेडिशनल सोसायटी*। फ्री प्रेस ऑफ ग्लेनको।

खंड 8

आधुनिकता के मुद्दे

खंड 8 प्रस्तावना

इस खंड में हमने आधुनिकता और आधुनिकीकरण की कुछ हाल ही की घटनाओं का अध्ययन किया है। इन मुद्दों के बारे में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण और सिद्धांत हैं और शिक्षार्थियों को इनसे परिचित होने के लिए सामग्री उपलब्ध कराई गई है। इसके बाद इस खंड में परम्परा और आधुनिकता के प्रश्न पर विचार किया गया है और यह बताया गया है कि ये एक-दूसरे से किस प्रकार संबंधित और परस्पर घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। अंत में हमने संरचना परवर्ती सिद्धांतों और आधुनिकता परवर्ती सिद्धांतों से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा की है। इस प्रकार इस खंड का अध्ययन करने से आपको समकालीन परिचर्चा और आधुनिकता परवर्ती सिद्धांतों में शामिल मुद्दों को समझने में सहायता प्राप्त होगी।